लोकतंत्र से स्वराज तक

विजय प्रताप व रितु प्रिया

समय का तकाजा है जीवन के सभी क्षेत्र में स्थानीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक लोकतंत्र कायम करना। जरूरत विश्व की समग्र समृद्धि और सुंदरता को कायम करने के लिए एक सामूहिक प्रयास की है। इस समग्र लोकतंत्र में स्वशासन, स्वधर्म, स्वाभिमान, सादगी और स्वदेशी के विचार व व्यवहार का समाहित होना जरूरी होगा।

समग्र लोकतंत्र के सपने को साकार करने की ओर

दक्षिण एशिया के लोग लंबे अर्से से कुछ मूल्यों का अनुसरण करते रहे हैं जिनकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति लोकतंत्र के विभिन्न आयामों और सर्वमुक्तिवाद के झंडे तले सामने आती है। पश्चिम के औपनिवेशिक हस्तक्षेप के पहले हमारी भारतीय, सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था की विशिष्ट पहचान सांस्कृतिक विविधता, सभी स्तरों पर राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण और निचले स्तर से शीर्ष तक प्रशासन में सबकी भागीदारी रही है।

अस्पृश्यता जैसी घृणित प्रथा और जातीय व्यवस्था से उपजी सामुदायिक व्यवस्था की रुढ़िवादिता के घृणित रूप में सामने आने जैसी हमारी अपनी खामियां रही हैं। फिर भी इस तरह की सभी खामियों और कमजोरियों के बावजूद वसुधैव कुटुम्बकम (समूचा विश्व है एक परिवार) की भावना हमारी सांस्कृतिक सोच का अनन्तकाल से हिस्सा रही है। यही कारण है कि हमारी सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता हमारी ताकत का एक स्रोत है और वास्तव में हमारी अमिट और अटूट पहचान का मुख्य प्रेरणा स्रोत है।

यह बात नहीं है कि सैद्धांतिक धुव्रीकरण और अपनी अलग पहचान कायम करने के दौर देखने को न मिले हों लेकिन बहुत जल्द ही बहुल्यवादी नजरिये ने इन्हें दरकिनार कर दिया। इस विश्वव्यापी नजरिये का मूल आधार यह है कि कोई भी संप्रदाय, धर्म, सैद्धांतिक समूह, वर्ग, सामाजिक–राजनीतिक संगठन या फिर कोई राज्य अथवा 'चर्च', सच्चाई को अपनी बपौती नहीं समझ सकता। सभी के 'सच' उनके दृष्टिकोण के अनुसार सच्चाई के कुछ

आयामों को ही पकड़ सकते हैं न कि संपूर्ण सच को। वास्तव में यह हमारे लोकतांत्रिक समाज का आधार बनता है।

पारंपरिक तौर पर लोकतंत्र को प्रशासन के तीन अंगों–न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका–के बीच अधिकारों के बंटवारे पर आधारित एक राजनैतिक व्यवस्था के तौर पर देखा जाता है। इस व्यवस्था में प्रशासन की वैधता का आधार चुनावी प्रक्रिया और मताधिकार होता है। यह एक ऐसी संकीर्ण परिभाषा है जो लोकतंत्र को महज एक राजनैतिक औजार बना कर रख देती है। हालांकि पिछली सदी के दौरान अनेक बदलाव देखने में आए हैं। इन्होंने पहले कभी न देखी गयी मानवीय ऊर्जा का एक ऐसा विस्फोट पैदा किया जिसने मानवीय जीवन को पुनः परिभाषित करने पर हमें मजबूर कर दिया। नये सामाजिक आंदोलनों का दर्शन लोकतंत्र की व्याख्या मौजूदा राजनैतिक मुख्यधारा में समझे गए और परिचालित लोकतंत्र के स्वरूप से कहीं ज्यादा शहरी और व्यापक सोच पर आधारित है। मानवता के इतिहास में इससे पहले कभी भी इतनी बड़ी मानवीय आबादी ने स्वराज (जैसे उस शब्द का इस्तेमाल गांधीजी ने किया और जो भारत में गांधी–प्रेरित आंदोलनों का मुख्य आधार रहा) के लिए काम नहीं किया।

हमारी आकांक्षा, लोकतंत्र को केवल राज्यतंत्र के एक तरीके के बजाय, जीवन जीने के तौर–तरीके के रूप में पुनः परिभाषित करना है। अगर लोकतंत्र जीवन के सभी स्तरों को और आयामों से सीधे तौर से जुड़ता है तो व्यापक लोकतंत्र के इस नजरिये को संपूर्ण स्वराज (पूरी तरह स्वशासन कायम करना) कहा जा सकता है।

लोकतंत्र की मौजूदा उदार अवधारणा से संपूर्ण स्वराज की यात्रा के दौरान हमारी निगाह मध्य–वाम राजनीतिक प्रक्रिया की ओर उठती है जिसमें इस प्रक्रिया के प्रति रुझान रखने वाले सामाजिक आंदोलन, संगठन और दल शामिल हैं। इस विश्लेषण में हिंसा को राजनीतिक औजार के रूप में इस्तेमाल करने के पक्षधर दक्षिण और वाम दोनों के ही उग्रवादी संगठन शामिल नहीं हैं।

भारत में मध्य–वाम आंदोलनों के समक्ष खड़ी सामयिक चुनौतियां

औपनिवेशिक शासन और इसके नतीजतन पैदा हुई आधुनिक पश्चिमी विश्व सोच के आधिपत्य ने भारतीय संपन्न वर्ग के एक बड़े हिस्से की सोच को विश्व व्यवस्था की एक क्षुद्र और पूरी तरह से मानवकेंद्रित और एकाश्म अवधारणा का पिछलग्गू बना दिया। इसके बावजूद भारत की आबादी के एक बड़े वर्ग ने आधुनिक पश्चिम से ज्ञान को अपनाने के साथ ही दुनिया के बारे में अपने मूल नजरिये को बनाये रखा। राज्य ने हाशिये पर बैठे आबादी के बहुमत को आधुनिक विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी के फायदे पहुंचाने के माध्यम के तौर पर काम करने के साथ ही ज्ञान की परंपरागत और स्वदेशी प्रथाओं और व्यवस्थाओं को कुछ न कुछ समर्थन जारी रखा। अन्य राजनीतिक विचारों वाले नेताओं के साथ गांधी के संवाद, लोक लुभावन राजनीति के दबाव और विश्व के बारे में बुनियादी बहुवादी सोच ने हमें अपनी मूल अवधारणा को बनाए रखने में मदद दी। लेकिन पिछले दो दशक के दौरान वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हमारी विश्व धारणा की विरासत के साथ कुछ अलगाव पैदा कर दिया है। दुनिया भर में मंदी के दौरान भारत का शुमार दुनिया की चंद तेजी से विकसित अर्थव्यवस्थाओं में हुआ, फिर भी हम अभी एक ठोस और टिकाऊ अर्थव्यवस्था नहीं बन पाए हैं। सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक पसंद–नापसंद और विभिन्न राजनीतिक सोच वाले संगठनों के बीच गठजोड़ के मामले में अभी हम दुविधा की स्थिति में हैं। अपनी सोच को बनाए रखते हुए विश्व में अपना स्थान बनाना और अन्य के लिए भी गुजांइश छोड़ते हुए अपना आत्मविश्वास हासिल करना और बनाए रखना हमारे समक्ष उत्पन्न आज की प्रमुख चुनौतियां हैं।

आज भी हम दक्षिण एशियाई, या कहा जाए कि दुनिया की नजर में अर्द्ध विकसित देशों में एक हैं क्योंकि भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा आर्थिक विकास के फायदों से वंचित है। हमारी मध्य–वाम राजनीतिक विचारधाराओं को, हमारी सांस्कृतिक सोच को बनाए रखते हुए, बुनियादी जरूरतों के मसलों का समाधान ढूंडना है। इस विचारधारा के अंदर विभाजन इस दोहरी चुनौती से ही पैदा होता है। एक राज्य केंद्रित धारा है जो आर्थिक विकास और कल्याणकारी राज्य के बीच में संतुलन बिठाने के लिए प्रयासरत है। इसके नतीजतन असमान सोच उभर कर सामने आई है। मसलन एक धारा ऐसी है जो पारंपरिक देसी विश्व दृष्टि को दकियानूसी मानकर पूरी तरह से आधुनिक विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी पर चलने की हिमायत

करता है वहीं ऐसी अन्य विचारधाराएं हैं जो हमारे अपने देसी ज्ञान और जिंदगी के स्थानीय तौर–तरीकों की सामयिक प्रासंगिकता पर ज़ोर देता है। दोनों को ही अपनी सैद्धांतिक और व्यवहारिक सीमाओं से जूझना पड़ रहा है। पिछली एक सदी के दौरान कल्याणकारी राज्य के वायदों को बहुसंख्य आबादी के लिए पूरा न कर पाने और आधुनिक विकास के पर्यावरण पर पड़ने वाले गंभीर परिणामों के कारण पहली सोच रखने वाली धारा जो विकास के लिए पूरी तरह से विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी पर निर्भरता की पैरवी करते हैं, के आश्वासनों पर सवालिया निशान उठ रहे हैं। वहीं प्राकृतिक संसाधनों में आ रहे बदलावों के बीच बहुसंख्य की जीवन शैली, आकांक्षाओं और मौजूदा ज्ञान के आधार पर न्यूनतम बुनियादी जरूरतों को सुनिश्चित करना दूसरी तरह की सोच रखने वालों, जो स्थानीय लोगों के ज्ञान पर जोर देते हैं के लिए एक बड़ी चुनौती है । इन चुनौतियों ने स्वदेशी सोच रखने वाली एक धारा को आधुनिक विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी के साथ ही आधुनिक लोकतंत्र समेत मौजूदा सामाजिक ताने–बाने को देश के संदर्भ में एकदम प्रतिकूल बताते हुए उसको 'दानवी' घोषित करने के लिए प्रेरित किया। क्रांतिकारी गांधीवादी या स्वदेशी समाजवादी विचारधारा अपनी सोच व कर्म के जरिये इस खाई को पाटने की कोशिश करती है। यह सोच हाशिये पर खड़ी आबादी की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए सरकारी और गैरसरकारी दोनी ही तरह के प्रयासों को अपनाने पर जोर देती है। साथ ही यह सोच लोकतांत्रिक सामाजिक विकास के लिए प्रासांगिक संवाद की जरूरत की पक्षधर है। यह ऐसे सिद्धांतों, नीतियों और कार्रवाइयों के अहिंसक प्रतिरोध की पक्षधर है जो लोकतंत्र विरोधी हैं और जो संसाधनों के आधार को नष्ट करने वाली और हाशिये पर खड़ी बहुसंख्य आबादी को उनकी बुनियादी जरूरतों से परे रखने और विश्व के बारे में उनकी सोच और सांस्कृतिक आत्मविश्वास को तुच्छ और घटिया साबित करने की कोशिश करती है। भारत में मार्क्सवादी वाम विचारधारा स्थानीय मूलभूत तौर–तरीकों और सोच को पहचानने और उससे अपने को जोड़ने की अपनी आम असमर्थता के कारण सांस्कृतिक तौर पर भारतीय बहुमत के बीच अपने को प्रासांगिक नहीं बना सकी। धुर उदारवादी और साथ ही मार्क्सवादी भारत–दक्षिण एशिया के सभी धार्मिक समुदायों के बीच व्याप्त अस्पृश्यता की प्रथा समेत जातीय दमन की गंभीरता को नहीं समझ सके। गांधी और राममनोहर लोहिया जैसे उनके समाजवादी अनुयायी उन लोगों में अग्रणी थे जिन्होंने

अस्पृश्यता की चुनौती से निपटने और उसपर काम करने की कोशिश की। इनके अलावा ज्योतिबा फुले और बाबा साहब अम्बेडकर जैसी विभूतियों समेत खुद दलितों (अछूत) के नेतृत्व ने भी इन चुनौतियों से सीधे लोहा लिया।

इसी तरह राष्ट्रवादी आंदोलन में महिलाओं की बड़े पैमाने पर भागीदारी भी अपनी तरह की एक उपलब्धि थी। दुर्भाग्य से इन महिलाओं की इन उपलब्धियों को आजादी के बाद के समय में समुचित तरीके से ठोस आधार नहीं दिया जा सका। 1970 और 1980 के दशकों में महिलाओं के सशक्त आंदोलन देखने में आए जिनके परिणाम स्वरूप महिलाओं ने अपने सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए कानूनी प्रावधानों को अपनाए जाने के लिए हर स्तर पर जोर दिया। महिलाओं के ये आंदोलन मध्यमार्गी–वामपंथी विचारधारा वाले अनेक राजनीतिक संगठनों की देन रहे हैं जिन्होंने महिलाओं के मसलों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर दिया। लेकिन पिछले दो दशक के दौरान महिलाओं के आंदोलन में कमजोरी आई है। इसका एक कारण पैतृक ढांचे का समुचित तरीके से विश्लेषण किए बिना महिलाओं के अधिकारों को अभिव्यक्त करने के लिए एक ज्यादा अराजनीतिक और पश्चिमी सोच वाले लिंग आधारित मुद्दों का प्रमुखता से उठना रहा है। जो भी हो भविष्य का परिदृश्य कहीं ज्यादा आशावादी है क्योंकि अब निचले स्तर के लोकतांत्रिक संस्थानों में महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित हो गए हैं। जाहिर तौर पर निचले स्तर पर महिलाओं का यह प्रशिक्षण जल्द ही प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तरों पर भी उभर कर सामने आएगा। फिर भी मौजूदा पैतृक ढांचे और मूल्यों और साथ ही सांस्कृतिक रुढ़िवाद से होने वाले प्रहारों (जैसा कि बालिका भ्रूण हत्या, युवा महिलाओं में बढ़ते खुदकुशी के मामलों और सजातीय विवाह प्रथा का विरोध कर अंतर्जातीय विवाह करने वालों के खिलाफ जातीय समुदायों की हिंसा में देखने को मिलता है।) से संघर्ष के लिए कहीं व्यापक और गहरे प्रयासों की जरूरत होगी। चुनौती इस बात की है कि नारीवाद और स्वराज के मूल्यों को परिवार और समुदाय की मूल इकाइयों का अंतरंग हिस्सा बनाया जाए। वासुधैव–कुटुम्बकम की भावना के मुद्दे नजर यह उम्मीद की जाती है कि विश्व परिवार भी तभी इन मूल्यों को प्रतिबंधित करेगा और अपने संस्थानों, राजनीति और अर्थवयवस्था को उसी के मुताबिक ढालेगा।

समग्र लोकतंत्र या संपूर्ण स्वराज

स्वशासन का विचार राजनीति से कहीं आगे जाता है। यह खुद जीवन को ही व्यापक तरीके से अपने में समाहित करता है जिससे हमारा जीवन और भी सार्थक बन सके। स्वराज मानवीय जीवन के सभी आयामों से अपने को जोड़ता है और व्यक्तिगत से लेकर वैश्विक समेत हर स्तर पर परस्पर संबंधों के मामले में लागू होता है। मसलनः

1. प्रकृति और मानव के बीच के संबंध।

2. व्यक्ति और समुदाय के बीच प्रक्रियाएं।

3. 'अपने' और 'अन्य' के बीच संबंध।

4. व्यक्ति और विभिन्न तरह और स्तरों के समुदायों व प्रशासनिक ढांचे के बीच संबंध, और

5. व्यक्ति और समूह के बाजार के साथ संबंध।

इन संबंधों के तहत लोकतंत्र के प्रयासों को इन अर्थों में लिया जा सकता है :

1. पर्यावरणीय लोकतंत्र

2. सामाजिक लोकतंत्र

3. सांस्कृतिक लोकतंत्र

4. राजनीतिक लोकतंत्र

5. आर्थिक लोकतंत्र

व्यापक लोकतांत्रिक क्रांति की भावना क्षितिज पर उभर रही है। मानव समुदाय मानवीय जीवन के सभी बुनियादी संबंधों को पुनर्परिभाषित करने की कोशिश कर रहा है। कोई भी एक सिद्धांत या क्षेत्र ऊपर बताए लोकतंत्र के सभी पांचों आयामों को एक साथ आगे ले जाने में

समर्थ नहीं दिखता है। प्रकृति और मानव के बीच के संबंधों को 'स्वराज' के संदर्भ में पर्यावरणीय राजनीतिक दलों, संगठनों, आंदोलनों और बौद्धिक प्रवृति का समूची दुनिया में प्रसार किया है। ये पर्यावरणीय आंदोलन बड़ी तेजी से दुनिया के उन हिस्सों तक में भी अपनी पैठ बना रहे हैं जहां विकास के पारंपरिक मानकों के मुताबिक ऐशो–आराम के सभी साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इन ऐशो–आराम वाले समाजों में पर्यावरण के प्रति लोगों की भावना को जागृत करने और पर्यावरण के विनाश से होने वाली चुनौतियों से जूझने की कोशिश हो रही है। इस तरह के ज्यादातार देशों में पर्यावरण आंदोलन संगठन ऐसी रक्षात्मक कार्यवाही में शामिल हैं जिसका उद्देश्य आजीविका की प्राकृतिक प्रणालियों को बचाने के साथ ही पर्यावरणीय और सांस्कृतिक अनुभूति में नयी जान फूंकना है। चूंकि इन प्रयासों का उद्देश्य प्रकृति और मानव के बीच के गतिशील संबंधों को सुलझाने के लिए स्थानीय समुदायों को इसमें शामिल करना है, इसलिए हम इसे पर्यावरणीय लोकतंत्र के लिए होने वाला प्रयास कह सकते हैं।

इसी तरह से व्यक्ति और समुदाय के बीच के गतिशील संबंधों को पुनर्परिभाषित करने के लिए जबरदस्त मानवीय कोशिश हो रही है। मानवाधिकारों के लिए काम कर रहे संगठनों के मुख्य एजेंडा में अस्मिता के मुद्दे शीर्ष पर हैं। इनमें लैंगिक न्याय, जाति विरोधी और गंभीर रंगभेद विरोधी आंदोलन शामिल हैं। समूची दुनिया में सामाजिक संबंधों को पुनर्रपरिभाषित करने के जज़्बे को हम सामाजिक लोकतंत्र का नाम दे सकते हैं। रंगभेद के खिलाफ विश्व सम्मेलन (2001 में दक्षिण अफ्रीका के डर्बन में आयोजित) को मिला समर्थन इस बात का सूचक है कि हम किस क्रांतिकारी मानवीय ऊर्जा की बात कर रहे हैं। महिलाओं का आंदोलन अब केवल महिलाओं के अधिकार का आंदोलन नहीं रह गया है बल्कि इसका सभी मसलों पर महिला की दृष्टि से एक नजरिया है। इस हिसाब से यह सामाजिक लोकतंत्र के लिए हो रहे प्रयासों का काल है।

अगर हम अपने और अन्य के बीच संबंधों की गतिशीलता और मौजूदा व्यवस्था के मायनों का विश्लेषण करते हैं तो ऐसे तमाम मसले उभर कर सामने आते हैं जिन्हें हम मोटे तौर पर सांस्कृतिक कह सकते हैं। इस मोर्चे पर भी चल रहे मानवीय प्रयास अभूतपूर्व हैं। नये विचारों

का विस्फोट और सैद्धांतिक टकराव के मामले सामने आ रहे हैं जो हिंसक और अहिंसक दोनों तरह के हैं। सांस्कृतिक लोकतंत्र के लिए कई तरह के प्रयास चल रहे हैं। विकसित समाजों की संस्कृति और आधुनिकता के आलोचक स्थानीय ज्ञान पर आधारित प्रणालियों में नयी जान डालने की कोशिश, जीवन जीने के तरीके और विचारों की विविधता के महत्व पर ज़ोर और रुढ़ीवादी नियंत्रण को शिथिल बनाने की कोशिशें, सभी इसका हिस्सा हैं। औपनिवेशिक शासन से आजाद होने के बाद बहुसंख्य देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं पर व्यापक नियंत्रण कायम किया। इसके नतीजतन रहन–सहन के स्तर में सुधार होने लगा, भले ही कुछ देशों में इनकी रफ्तार मंद रही हो। अब प्राकृतिक संसाधन आधारित अर्थव्यवस्थाओं के साथ स्थानीय मूल निवासी और छोटे व सीमांत किसान अपनी आजीविका के सम्मानजनक तौर–तरीकों की तलाश में लग गए। यह कोशिश दो तरीकों से हो रही है। पहली कोशिश रईस और समृद्ध औद्योगिक देशों के अंधानुकरण की है तो दूसरा प्रयास स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर वापस अपना नियंत्रण कायम करने और साथ ही कृषि, औषधि, अनाज और जलप्रबंधन इत्यादि में स्थानीय ज्ञान आधारित नीतियों को लागू करने की है। यह दोनों ही तरीके आर्थिक लोकतंत्र की अकंठ चाहत का प्रतीक हैं। ज्यादातर पूर्व उपनिवेशों में उपनिवेश विरोधी संघर्ष ने नई राजनीतिक पहचान का निर्माण किया। स्वशासन की चाहत सर्वव्यापी है। लोग उपनिवेश काल के दौरान स्थापित ढांचों का पुनर्परीक्षण और पुनर्व्याख्या कर रहे हैं। कई बार बदतर भी हो जाती है क्योंकि मजबूती से पैर जमाए चुनिंदा लोगों का समूह निरंकुश व्यवस्था कायम कर देता है। सौभाग्य से राजनीतिक संस्थानों में जनता की भागीदारी ने ठोस वैधता हासिल कर ली है। (यह बात इस तथ्य से जाहिर होती है कि अनेक तानाशाहों को किसी न किसी चुनाव के ज़रिये, भले ही ये आंशिक या त्रुटिपूर्ण क्यों न रहे हों, वैद्यता का जामा ओढ़ने की कसरत करनी पड़ी) यह राजनीतिक लोकतंत्र का सूचक है। लोकतांत्रिक क्रांति की यह मांग है कि हम इस तरह की सभी ऊर्जा के सकारात्मक आयाम को पहचानें और उससे जुड़े और उनके माध्यम से एक सुस्पष्ट विश्व दृष्टि और भविष्य के लिए सपने के निर्माण में योगदान दें। यह सार्वभौमिक मानवीय वैश्वीकरण का हमारा दर्शन है।

लोकतांत्रिक अजेंडा

लोकतांत्रिक आकांक्षाओं के उभार के इस अभूतपूर्व दौर में मानवीय सामूहिकता के विभिन्न स्तरों पर नये मानदंड कायम करने होंगे। यह काम सभी के साथ संवाद के ज़रिये करना होगा जिसमें विरोधी तक शामिल हों (मसलन एक–दूसरे के विरोधी दो पड़ोसी देश या एक ही देश में दो सैद्धांतिक प्रतिद्वंदी या जिनके समुदायों और परिवारों के बीच द्वंद हो)। ऐसे में दोनों पक्षों को एक–दूसरे के 'सच' को समझना और स्वीकार करना होगा और पूरी गंभीरता के साथ यह कोशिश करनी होगी कि वह एक–दूसरे के दृष्टिकोण के बारे में दोष निर्धारण से बचें। दूसरे के दृष्टिकोण का मूल्यांकन मर्यादित हो जिससे कटुता ने बढ़े। विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हुए संवादों में लोगों ने ऐसे प्रयास करना शुरू कर दिया है जिनसे समान मूल्यों और उद्देश्यों के पक्षधर लोगों और संगठनों का एक अंतर्राष्ट्रीय ढांचा खड़ा हो सके। इस तरह की पहल को एक ऐसे प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय नागरिक समाज ऐसे अनेक मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय या क्षेत्रीय बातचीत की प्रक्रिया शुरू कराये, जो इस मौके पर बेहद महत्वपूर्ण है।

जाहिर तौर पर लोकतंत्र के बारे में इतने छुटपुट तरीके और टुकड़ों में बातचीत करना कुछ हद तक सहज न होगा क्योंकि लोकतंत्र मानव के अपने खुद के समग्र सकारात्मक प्रयास की एक रचनात्मक प्रक्रिया है और इसे टुकड़ों में नहीं देखा जा सकता। फिर भी अगर लोकतंत्र की गूढ़ता को ऊपर बताए गए पांच आयामों के जरिये पेश किया जाता है तो समस्याओं और संभावनाओं को कहीं ज्यादा बेहतर ढंग से सामने लाया जा सकेगा। इन आयामों को आजमाने का एक संभावित तरीका कुछ इस तरह का हो सकता है। :

1. दरिद्रनारायण को अधिकार सम्पन्न बनाना –

गांधी, मुहम्मद, ईसामसीह और बुद्ध समेत मानवता के सभी महान गुरुओं ने समाज के निर्धनतम और कमजोर लोगों को अधिकार सम्पन्न बनाने के महत्व पर जोर दिया। संभवतः अनेक लोग इस तरह की अवधारणा को संरक्षणवादी, विशिष्ट या भोली–भाली सोच समझते हैं। जो भी हो किसी भी तरह के लोकतंत्र के लिए एकमात्र सबसे अहम् परीक्षा यह होती है कि क्या वह कुछ इस तरह से काम करता है जिससे कि समाज के निर्धनतम, पददलित और

सबसे कम असरदार लोगों की जरूरतों और अधिकारों को संरक्षण मिलता हो। हर समाज और इतिहास के हर दौर मे इसका मतलब अलग–अलग होगा क्योंकि गरीबी और दमन, बार–बार अलग–अलग तौर–तरीकों से पैदा किया गया होगा। लेकिन मुद्दा या उद्देश्य एकदम स्पष्ट और एक ही है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि दरिद्रनारायण की जरूरतों और चिंताओं के निराकरण के लिए ऐसा कौन सा रास्ता अपनाया जाए जिनसे उन्हें अधिकार मिले न कि आशीर्वाद। सभी तरह के विचारों में दरिद्रनारायण के केंद्र में होने के साथ सामान और सेवाओं के व्यापार से जुड़े सभी मुद्दों, प्रोद्योगिकी को अपनाने के मामलों और उत्पादन के तौर–तरीकों के बारे में हमेशा से ही बहस और मानवीय पहल होती रही है। इस तरह के सभी मसलों को लोकतंत्र का आर्थिक आयाम या सुविधा के लिए, आर्थिक लोकतंत्र कहा जा सकता है।

2. पर्यावरण पुनर्उत्थान और प्राकृतिक संसाधनों पर जनता का नियंत्रण (पर्यावरणीय लोकतंत्र)

पर्यावरण में गिरावट हमारे समय का एक सबसे गंभीर मसला है। इसमें वायु, जल और भूमि प्रदूषण, प्रजातियों और जैव विविधता का लुप्त होना, ओजोन परत का नष्ट होना, जंगलों का कटना, भूकटाव और मरूस्थलीकरण शामिल हैं। किसी भी आंदोलन के लिए यह एक बेहद अहम् मुद्दा होना चाहिए। लेकिन पश्चिम और 'दक्षिण' के पश्चिमी सोच वाले संगठनों के विचारविमर्श और चिंतन, प्रायः बहुसंख्य लोगों (खासकर ग्रामीण) के लिए बहुत ही अलग–थलग से होते हैं। इन संवादों के नतीजतन अपनाये जाने वाले कार्यक्रम और उपाय न तो आबादी के बहुमत की समझ में आते हैं, न ही उससे किसी तरह का सरोकार रखते हैं। दीर्घ काल में इस तरह के कार्यक्रम उल्टे गले की फांस बन सकते हैं। एक बेहतर तरीका तो यह होगा कि प्राकृतिक संसाधनों पर लोगों के नियंत्रण पर जोर दिया जाए और विभिन्न तरह के पर्यावरण और भूसंरक्षण संबंधी उपायों को इस तरह की पहल में शामिल किया जाए।

मानव के प्रकृति के साथ संबंध, जिसमें मानव एक उपभोक्ता, नियंत्रक, पोषक और विनाशक हो, कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनका निराकरण पर्यावरणीय लोकतंत्र के तहत किया जाना चाहिये।

3. मानवीय गरिमा को सुनिश्चित करना (सामाजिक लोकतंत्र)

इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि नयी उदारवादी आर्थिक नीतियां और नए दक्षिणपंथ द्वारा अपनाये जा रहे अन्य उपाय इतने व्यापक स्तर पर घोर गरीबी के जनक बनेंगे जैसा कि मानवीय इतिहास में पहले कभी नही देखा गया। अनेक मामलों में समस्याओं को दरिद्रनारायण को अधिकार सम्पन्न बनाने के ढांचे के तहत देखा जाना चाहिए। फिर भी ज्यादातार मामलों में बेरोजगारी या अर्धबेरोजगारी, अस्थायी रोजगार, कामगारों के अधिकार और काम के उपलब्ध अवसर कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें दुनिया भर में मानवीय गरिमा के तौर पर देखा जाता है। यहां तक कि उन मामलों में जहां नव उदारवादी की डिनर टेबल से गिरा टुकड़ा लोगों की बुनियादी भूख को पूरा करने से कहीं ज्यादा है, बहुत ही नुकसानदेह तरीके से मानवीय गरिमा को बलि पर चढ़ा दिया जाता है।

अधिपत्यकारी नव उदारवादी नीतियां लालसा की मूरत खड़ी करती हैं। उपभोक्तावाद और भोगविलास को प्रोत्साहित करती हैं और लोगों को अच्छी नैतिक पसन्द अपनाने और आध्यात्म की राह पर चलने से रोकती हैं। ये नीतियां मुनाफे के लिए मानवीय अस्मिता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष दलितों के बीच एक प्रधान मुद्दा होगा। इस तरह से वे पाश्विक वैश्विकरण के खिलाफ संघर्ष में अपने नजरिये और अनुभव से योगदान देने में अच्छी तरह समर्थ होंगे। दलितों के बीच यह एक ऐसी वास्तविक स्थिति है जिसने बाबासाहेब अम्बेडकर समेत अनेक विचारकों को इस बात पर जोर देने के लिए मजबूर किया कि भारत में जाति उन्मूलन आंदोलन कितना जरूरी है। (शेष दक्षिण एशिया में तो इसे असमानता के एक अहम् स्रोत तक के रूप में नहीं देखा जाता। पिछले दो दशक के दौरान उच्च जाति अपनी इस पूर्व की सोच से पीछे हटती दिखाइ पड़ी है जिसमें उसने पूर्व अछूत जातियों को अधिकार सम्पन्न बनाने की रचीकार कर लिया था। इसके अलावा सामाजिक मंच पर महिलाओं की बढ़ती आवाज को दबाने के लिए उनके खिलाफ हिंसा और कुकृत्य के नये तरीके अपनाए जा रहे हैं। इसका उदाहरण भारत में शून्य से छः साल के आयुवर्ग में बालिकाओं का गिरता अनुपात है। इन मसलों को सामाजिक लोकतंत्र के ताने–बाने के तहत देखा जाना चाहिए।

4. बहुलवादी सहअस्तित्व को मजबूत बनाना – (सांस्कृतिक लोकतंत्र) सहस्त्राब्दि की शुरूआत में विश्व के हर एक हिस्से के लिए बहुल सह अस्तित्व और सांप्रदायिक या नस्ली हिंसा को

रोकना एक बेहद महत्व का मुद्दा हो गया। जब विश्व का आर्थिक एवं सांस्कृतिक संकट गहराता है तब सांप्रदायिक हिंसा का खतरा बढ़ता है। गंभीर पर्यावरणीय क्षति और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण का सामना कर रहे क्षेत्रों में इस तरह की समस्याएं और भी गंभीर हो सकती हैं।

दक्षिण एशिया में विभिन्न जाति और धार्मिक समूहों और धर्मों के भीतर विभिन्न समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की एक जीवन्त परम्परा रही है। वर्तमान संदर्भ मेकं यह परंपरा बेहद दबाव झेल रही है और इससे नये रक्त संचार की जरूरत है। जनवरी 2001 मेंम बंग्लादेश में फतवों पर प्रतिबंध का न्यायिक फैसला सांस्कृतिक लोकतंत्र का एक नायाब उदाहरण है। हिन्दुओं के बीच ब्राह्मणवादी मानदंडों से इकरार न रखने वाली लोक परंपराओं और प्रथाओं को समुचित सम्मान देना एक प्राथमिकता वाला विषय होना चाहिए।

सांस्कृतिक लोकतंत्र के अभियान के तहत यूरोप और अमेरिका दुनिया के तमाम देशों में इतिहास को विकृत बनाने की कोशिशों के खिलाफ लामबंद होना समय का तकाजा है। यूरोप में मुसलमानों को कट्टरवादरी या समाज के गैरबहुलवादी तबके के तौर पर पेश किया जा रहा है। 1990 के खाड़ी युद्ध जैसी घटनाओं ने मुस्लिम देशों और पश्चिमी देशों के बीच ध्रुवीकरण को और भी बढ़ाया है। क्योंकि इस युद्ध ने समूचे इस्लामी जगत में पश्चिम विरोधी भावनाओं का संचार किया है। यूरोपी एकीकरण (सभी पूर्व औपनिवेशिक ताकतों को मिला कर एक नयी महाशक्ति का निर्माण) ने स्थिति को और भी गंभीर बनाया है क्योंकि इसे इस्लामी देशों की विरोधी एक शक्तिशाली ताकत के रूप में देखा जाता है। यह टकराव उस स्थिति में और भी गंभीर हो जाएगा जब यूरोपीय संघ एक वास्तविक संघीय राज्य बन जाता है और अगर यह एक संयुक्त रक्षासमिति और एक संयुक्त सेना खड़ी कर लेता है। ऐसी स्थिति में नार्डिक देशों समेत यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देश एक बड़ी सैन्य महाशक्ति का हिस्सा बन जाएंगे जिसके पास परमाणु हथियारों का विशाल जखीरा होगा।

हालांकि बहुलवादी सह अस्तित्व को किसी नकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि टकराव के उन परिदृश्यों के माध्यम से देखना चाहिए जिन्हें रोकने की जरूरत है। इसे एक ऐसी समृद्धि

के तौर पर देखना चाहिए जहां मतभेदों पर संवाद के जरिये लगातार नयी चीजें निर्मित और पुनर्निर्मित की जा रही हैं। समूचा मानव इतिहास सांस्कृतिक आदान–प्रदान, प्रसार और नई चीजों और बातों को अपनाने के जरिये बना है। जीवन के तौर–तरीकों में विविधता ऐसे परस्पर सहायक तौर–तरीके मुहैया कराती है जिनसे किसी भी समाज में मानवीय प्रवृतियों की विभिन्न अभिव्यक्तियों को पूरा किया जा सके और इस तरह से इसे सींचा जाना चाहिये।

लोकतंत्र (राजनीतिक लोकतंत्र) को पोसना और गहरा बनाना

राजनीतिक लोकतंत्र का अगर लगातार ख्याल और बचाव न किया जाए तो यह गंभीर तरीके से खतरे में पड़ सकता है। सामाजिक व्यवस्था के गैर लोकतांत्रिक प्रहारों के खिलाफ किए गए सभी उपाय केवल तभी प्रभावी हो सकते हैं जब जनता सक्रिय रूप से लोकतांत्रिक ढांचों और मानदंडों की पहरेदारी करे। लोकतंत्र जिसे भागीदारी, प्रतिनिधित्व और कानून के शासन, सांस्कृतिक भाषाई, धार्मिक और राजनीतिक अल्पसंख्यकों को संरक्षण तथा राजनीतिक फैसला करने की प्रक्रिया की पारदर्शिता के तौर पर परिभाषित किया जाता है उसे पोषित और गहरा बनाया जाना चाहिये। लेकिन वर्तमान में विभिन्न संस्कृतियों, संस्थानों और परंपराओं वाले सभी देशों में इस तरह की लोकतांत्रिक प्रक्रियों के जिस केवल एक ही मॉडल को अपनाया जा रहा है वह है मुक्त पश्चिमी या बाजार आधारित लोकतंत्र। विडंबना है कि यह दुनिया के एक छोटे से सांस्कृतिक–ऐतिहासिक क्षेत्र में विकसित हुआ है।

अभी तक सार्वभौमिक और मानवीय मूल्यों को शामिल करके एक समाज को खड़ा करने के लिए जिस सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत ढांचे का निर्माण किया जाता है वह बहुदलीय व्यवस्था, व्यस्क मताधिकार और कार्यपालिका, विधायिका और न्याय पालिका के अधिकारों के बंटवारे पर आधारित है। इस ढांचे तक को उस समय खतरा पैदा हो जाता है जब लोकतंत्र के अन्य तरीकों को दर किनार किया जाए। सत्ता की अनुपूरकता का सिद्धांत यानि जिसमें लोगों को निचले स्तर पर स्वशासन की इजाजत देना शामिल है, भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र को सुनिश्चित करने के लिए अहम् है। जिला, प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर की राजनीतिक सत्ता को उच्चस्तरीय सत्ता के बजाय सत्ता के अलग क्षेत्रों के तौर पर लिया जाना चाहिये।

स्वदेशीकरण और पश्चितीकरण विरोधी लहर को सस्ते में दरकिनार नहीं किया जा सकता है। कहा जा सकता है कि इस्लामी पुनरुत्थान, हिन्दुवादी आंदोलनों का विकास और चीन का आर्थिक और सांस्कृतिक उदय आंशिक रूप से पश्चिम विरोधी लहर की देन है। अगर दक्षिण एशिया की विभिन्न दमनकारी ताकतों द्वारा लोकतंत्र, मानवाधिकारों और महिला अधिकार आंदोलनों को पश्चिमी मूल्य और सोच बना कर खारिज किया जाता है तो इस बात का वास्तविक खतरा है कि नयी सहस्त्राब्दी की पहली ही सदी में ये मूल्य गंभीर तरीके से खतरे में पड़ जाएंगे।

खोज की दिशा

सहभागी लोकतंत्र जिसमें संस्थान विचार और विचारधाराएं खुद लोगों द्वारा तैयार की जाती हैं, पर पूर्ण रूप से नजर दौड़ाने पर प्रशासन के संस्थानों के मामले में विरोधाभास नजर आता है।

ऊपर से समाधान को थोपने की पैरवी करने की बजाय उन संभावनाओं और दिशाओं से जुड़े सवालों पर विचार करना चाहेंगे जो मौजूदार असंतोष से पैदा हो सकते हैं। संपूर्ण स्वराज के आदर्श के लिए काम करने का हमारा तरीका मानव की आस्था, विश्वास और उम्मीद पर आधारित है और इसमें सभी सामाजिक प्रक्रियाएं शामिल हैं।

विश्वास : हम मानव की इस सोच के साथ इकरार रखते हैं कि स्वार्थ और लालच मानव जीवन की यात्रा का केवल एक हिस्सा है और यह मानव के स्वभाव को तय करने में सबसे अहम और असरदार नहीं है। जरूरतों को उनका बखान किए बिना पूरा यहां तक कि तृप्त किया जा सकता है। हम पर जोर देकर कहते हैं कि मानव को केवल सुख–साधनों की चाहत रखने वाले के तौर पर परिभाषित करना बेहद ओछी बात है। मानव के नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आयामा भी होते हैं। इन आयामों को दर–किनार करने से जीवन की

सार्थकता ही कमजारे पड़ती जा रही है जिसका नतीजा मजहबी उग्रवाद के जवाबी प्रहार की शक्ल में देखने को मिल रहा है।

उम्मीद : मानव स्वभाव की इस धारणा में विश्वास सतत उम्मीद के आधार का निर्माण करतो है और इस धारणा को मजबूत बनाता है कि मानव जीवन अच्छाई और बुराई के बीच एक सतत् संघर्ष है। सच्चे लोकतंत्र के निर्माण का काम अब पूरी मजबूती के साथ ऊपर से समाजवाद के स्वरूप को थोपे बिना पूंजीवाद में बदलाव और सुधार के विश्व संघर्ष के साथ जुड़ा हुआ है। हालांकि यह संवेदना न्याय और आजादी के मूल्यों के साथ अच्छाई के लिए लड़ाई की सतत मानवीय जरूरत पर आधारित है। यह बहुत ही सीधे सपाट ढंगक से सामायिक संदर्भ के दायरे में जीवन के मकड़जाल की समझ और पोषित करने पर आधारित है।

तौर–तरीके : लोकतांत्रिक संघर्ष के लिए तौर–तरीके के तीन आयाम हैं। पहला है वर्तमान समय के स्वरूप को पहचानते हुए संवाद का। बातचीत के जरिये हम न केवल अपने समय को पहचानते हैं बल्कि अइपने समय की मांगों को भी समझते हैं। विरोधी समेत सभी के साथ हर स्तर पर बातचीत केवल तभी संभव है जब हम साजिश की कल्पना में विश्वास न करें और मानव की अन्यास के खिलाफ संघर्ष में त्याग करने की भावना में आस्था जताएं। समय के सार को तब तक पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है जब तक कि हम साथ ही अन्याय के खिलाफ संघर्ष नहीं करते। इसके लिए दूसरा आयाम अहिंसक सविनय अवज्ञा है जो बुराई पर अच्छाई की जीत के मानवीय संघर्ष को अभिव्यक्ति देता है और सत्ताधरी विरोधी को बातचीत के लिए निमंत्रित करता है। तीसरा आयाम रचनात्मक कार्रवाई का है जिससे व्यापक लोकतंत्र या संपूर्ण स्वराज के विभिन्न आयामों को पूरा करने वाले एक लोकतांत्रित समाज के अनुरूप जीवन शैली, गतिविधियों और ढांचों का निमार्ण किया जा सके।

ठोस कार्रवाई के प्रस्ताव

ऊपर बताये तौर–तरीकों और मध्यमार्गी– समाजवादी–पर्यावरणीय –नारीवादी सामाजिक कार्रवाई के समक्ष खड़ी सामयिक चुनौतियों के मद्देनजर ठोस कार्रवाई के लिए हम कुछ संभावनाओं को सामने रखते हैं। यह केवल कागज पर लिखी इबारत ही है क्योंकि कार्रवाई का अजेंडा जन संगठनों और उनकी पैरवी करने वाले संगठनों को निचले स्तर से शीर्ष तक के दर्शन के मुताबिक खुद विकसित करना होगा। इस दौरान उन्हें व्यापक लोकतंत्र के विविध ताने–बाने और सामाजिक संगठन के स्तर को ध्यान में रखकर करना होगा।

संवाद

विविध विचारों को विकसित, अभिव्यक्त और फलीभूत करने के लिए रास्ता निकालना–मध्यमार्गी–समाजवाद–पर्यावरणीय–नारीवादी संगठनों के बीच और उनके भीतर विभिन्न तरह के विचारों और दर्शन के बीच संवाद से सभी मानवीय कोशिशों को फायदा पहुंचेगा। इससे समूची दुनियाप के अरबों लोगों की समानता और न्याय की अदम्य इच्छा को पूरा कर पाने का हमारा विश्वास मजबूत होगा। खुशहाल स्वराज की धारा प्रवाहित होने के साथ न्याय और समानता के लिए हिंसक जीतना भी संभव हो सकेगा। इस तरह के रास्ते पर चल रहे लोगों और संगठनों को स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे अहिंसक सविनय अवज्ञा आंदोलनों में साझीदार बनने के लिए प्रेरित किया जा सके। बातचीत और अन्य लोकतांत्रिक तरीकों से विरोधियों (साम्राज्यवादी–पूंजीवादी,फांसीवाद औ भाड़े के आतंकियों) को रास्ते पर लाना भी संभव हो सकेगा।

व्यापक लोकतंत्र के बारे में

सतत् बातचीत के लिए अस्थायी ढांचों और मंचों को स्थायी रूप देना

इस बात की जरूरत है कि हम लोकतंत्र को मजबूत और गहरा बनाने के मकसद से उसमें हस्तक्षेप के सकारात्मक तरीकों पर विचार के लिए अन्य संगठनों, क्लबों, संस्थानों, आंदोलनकारी संगठनों और राजनीतिक दलों को तैयार करने के लिए गंभीर कोशिशें करें।

विश्व लोकतांत्रिकरण के लिए यह एक बेहद सामरिक तरीका बन सकता है। विश्व सामाजिक मंच द्वारा मुहैया कराई गई गुंजाइश का इस्तेमाल नए वैश्विक गठबंधनों के निर्माण के लिए किया जाना चाहिये। दक्षिण–दक्षिण (विकासशील देशों के बीच) के बीच संवाद के दायरे में न केवल समूचे अफ्रीका–एशिया लातिनी अमेरिरा और कैरिबियायी देशों, बल्कि पश्चिम के निर्धन देशें को भी शामिल करना चाहिए।

लोकतांत्रिक गुंजाइश और जीवन शैली की सुरक्षा

हमें कुछ रक्षात्मक कार्रवाई करने की भी नितांत आवश्यकता है। हमें ऐसी चीजों को बचाए रखने के लिएउ एक रक्षात्मक रणनीति तैयार करनी चाहिए जिन्हें अधिपत्यकारी ताकतें अब तक बरबाद नहीं कर सकी हैं। हजारों साल से दक्षिणी सभ्यताएं ऐसी जीवन शैली अपनाती रही हैमें जिन्हें अब हम पर्यावरण आधारित सिद्धांत कहते हैं। उनकी आजीविकास के तौर–तरीकों पर ध्यान से गौर फरमाने से यह बात सामने आती है कि अपनी जरूरतों को सीमित रखना प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने और उन्हें फिर से पैदा करने की उनकी सोची समझी पसंद और कोशिश थी। उन्होंने यह कोशिश हमेशा इसलिए नहीं की कि वे प्रोद्योगी रूप से पिछड़े हुए थे लेकिन अब वैश्वीकरण का मौजूदा स्वरूप इन समुदायों को बहुत ही तेज गति से नष्ट कर रहा है। इस बात की जरूरत है कि विश्व के लोकतांत्रिक संगठन दक्षिण के इन पर्यावरण पूरक और आधारित समुदायों की रक्षा के लिए एक रक्षा समिति का गठन करें। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हजारों वर्षों से संजोकर रखी गई इस जीवन शैली का अगले चंद दशकों में पूरी तरह विनाश हो जाएगा।

हमें परिवार, जिसे हम विश्व कहते हैं पर बुने जा रहे स्वपनों, संघर्षों और लोकतांत्रिक तौर–तरीकों को पहचानने के लिए सूचना अनुसंधान और समाचार माध्यमों के एक स्वतंत्र तंत्र के निर्माण की जरूरत है। हमें अमेरिका उपभोक्तावाद के स्वर्ग की मृग मरीचिका के जाल में अभी भी बंद लोगों को इस तरह की जानकारी मुहैया कराने की जरूरत है। हमें दुनिया भर में ऐसे मीडिया केंद्र स्थापित करना चाहिए जो एकत्र की गई जानकारी को लोगों को अंग्रकजी के अलावा खुद उनकी भाषा में मुहैया कराएं।

इस तरह के सभी संवाद और संस्थानों और तंत्रों के निर्माण की प्रक्रिया अंततः लोकतंत्र को बचाने, मजबूत बनाने और उसका विस्तार करने के लिए एक विश्व मोर्चे के गठन तक जानी चाहिए। इस मोर्चे का गठन बौद्धिक सक्रियता और संगठन निर्माण के मिले–जुले प्रयास से किया जा सकता है। संगठन का निर्माण केवल बौद्धिक सक्रियता के माध्यम से ही नहीं हो सकता। सैद्धांतिक ढांचे और तंत्र के निर्माण का प्रभावी रूप से तभी हो सकता है जब हम गांधी द्वारा विकसित सविनय अवज्ञा और रचनात्मक कार्रवाई को अपने प्रयासों का औजार बनाएं।

अहिंसक नागरिक प्रतिरोध का निर्माण

जो लोग लोकतंत्र में विश्वास करते हैं उन्हें न खुद हिसा से तौबार करनी होगी बल्कि सामाजिक बदलाव के लिए हिंसा के रास्ते को भी अवैध बनाना होगा। गांधी यह मानते थे कि केवल उन्हीं लोगों को बेजा कानूनों के खिलाफ संघर्ष का अधिकार है जो खुद सभ्य हैं और देश के कानूनों का पालन करते हैं। ऐसी सभी विघटनकारी कोशिशों के खिलाफ अभियान चलाया जाना चाहिए जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय भावनाओं के नाम पर काम के अधिकार और स्थायी आजीविका के अधिकार जैसे मुद्दों को पृष्ठभूमि में ढकेलती है।

अगर बातचीत के अन्य सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं तो अहिंसक सविनय अवज्ञा का रास्ता अपनाया जाना चाहिए। उदारहण के लिए जैव प्रोद्योगिकी के सहारे उत्पादित खाद्यानों और आनुवांशिक तरीके से निर्मित अनाज और बीजों के बहिष्कार और विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने, खनन और बांध परियोजनाओं के खिलाफ संघर्ष के मामले मेकं जिनसे बड़े पैमाने पर आबादी विस्थापित होती है। इसके लिए जरूरी है कि जमीन के टिकाऊ इस्तेमाल समेत अन्य विकल्पों को रखने के लिए पहले से ही पर्याप्त राजनीतिक और तकनीकी तैयारी की जाए।

मौजूदा विश्व संगठनों को अहिंसक सविनय अवज्ञा की प्रक्रिया के प्रति संवेदनशील बनाते हुए और भी लोकतांत्रिक रूप दिया जाना चाहिए और साथ ही उन्हें उन जरूरतों के प्रति अनुकूल रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिनके लिए इस तरह के आंदोलन और कार्रवाई

की जा रही है। सविनय अवज्ञा इन संस्थानों पर इस बात के लिए दबाव डालेगा कि वे परस्पर संवाद और समझ के जरिये अपनी सोच और पहल में सतत बदलाव करें।

****